पंडित जवाहरलाल नेहरू : वैज्ञानिक मानसिकता के धनी

वेदप्रिय

पंडित नेहरू आधुनिक भारत के नवनिर्माताओं में से एक थे। द्वितीय विश्वयुद्ध की त्रासदी के तुरंत बाद सदियों की गुलामी, पुरातनपंथी जकड़न, आपसी फूट आदि ने देश को खोखला कर दिया था। जातिवाद, छुआछूत, आर्थिक विपन्नता एवं सांस्कृतिक पिछड़ापन यहां हावी था। विभाजन की त्रासदी के चलते विभिन्नताओं में एकता बनाए रखना कोई कम चुनौतीपूर्ण नहीं था। राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन ने एक नई ऊर्जा का संचार ज़रूर किया था जिसके कारण हमने आज़ादी तो पा ली थी लेकिन राष्ट्र के पुनर्निर्माण का एक बड़ा कार्य हमारे सामने था। एक बड़े दूरद्रष्टा की ज़रूरत थी। नेहरू के रूप में हमें एक महान व्यक्तित्व का नेतृत्व मिला।

इन्होंने विश्व की सभी महान सभ्यताओं का अध्ययन किया हुआ था। 'द डिस्कवरी ऑफ इंडिया' (1946) तथा 'Glimpses of World History ' (1934) जैसी विश्व प्रसिद्ध पुस्तकें कोई ऐसे ही थोड़े लिख सकता है। इन्होंने न केवल विश्व इतिहास को पढ़ा था अपितु विश्व के प्राचीन और समकालीन महापुरुषों का बारीक अध्ययन भी किया था। इन्होंने इनकी जीवनियों पर भी लिखा था। आप एक विश्व प्रसिद्ध राजनेता रहे हैं, इसमें कोई शक नहीं है। लेकिन एक बात और खास है जो इनके व्यक्तित्व में दर्ज है, जो इन्हें एक विशेष मुकाम हासिल करवाती है। वह है इनकी वैज्ञानिक दृष्टि। कुछ विरले ही राजनीतिक दिग्गज रहे होंगे जो इस प्रकार वैज्ञानिक सोच रखते हों।

इन्होंने सन् 1907 में कैंब्रिज विश्वविद्यालय में दाखिला लिया था। इनके विषय थे भौतिकी, रसायन शास्त्र ,वनस्पतिशास्त्र एवं भूगर्भविज्ञान। ये गणित में ज़्यादा निपुण नहीं थे। उन्होंने सन् 1910 में विश्वविद्यालय में द्वितीय स्थान प्राप्त किया था और इन विषयों में ऑनर्स की डिग्री हासिल की थी। आप औपचारिक वैज्ञानिक शोधों की ओर जा सकते थे लेकिन नहीं गए। उनके पिताजी श्री मोतीलाल नेहरू एक प्रतिष्ठित वकील थे। इसलिए इनका पारिवारिक तकाज़ा और ज़रूरत थी कि ये कानून पढ़ें और अपने पिताजी की विरासत को आगे बढ़ाएं। इसलिए इन्होंने सन् 1910 में कानून की पढ़ाई शुरू की और 1912 में ये बैरिस्टर बन गए। यहां इंग्लैंड में पढ़ते हुए ये फेबियन समाजवादियों से बहुत प्रभावित थे। फेबियन समाजवादी ग्रुप वह ग्रुप था जो संसदीय प्रणाली में लोकतांत्रिक तरीके से सुधारों के ज़रिए समाजवाद की हिमायत करता था। युवा नेहरू के मस्तिष्क पर इन दो विचारों (वैज्ञानिकता एवं समाजवाद) की गहरी छाप पड़ी। आप यह भी समझते थे कि Science is a natural agent of Socialism . यहां भारत में लौटने पर इनकी प्राथमिकताएं कुछ और बन गईं। यह ज़रूरी भी था। इन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन में बढ़-चढ़कर भाग लिया। सन् 1927 में ये अक्तूबर क्रांति की दसवीं वर्षगांठ के अवसर पर यूएसएसआर गए। यहां ये जॉन रीड की पुस्तक %दस दिन जब दुनिया हिल उठी% से बहुत प्रभावित हुए। इन्होंने यहां की व्यवस्था का भी बारीकी से अध्ययन किया। यहां इन्होंने समझा कि वैज्ञानिक दृष्टि सामाजिक जीवन के साथ-साथ व्यक्तिगत जीवन के लिए भी महत्त्वपूर्ण है। वैज्ञानिक दृष्टि से इनका आग्रह था कि It is a temper of a free man. उन्होंने इस वैज्ञानिकता को विश्व शांति के साथ भी जोड़ा।

इनका पूरा विश्वास था कि बिना विज्ञान के अनुप्रयोगों के किसी राष्ट्र का उत्थान संभव नहीं। सन् 1938 में तत्कालीन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष श्री सुभाष चंद्र बोस द्वारा स्थापित राष्ट्रीय योजना कमेटी के चेयरमैन बने। इस योजना कमेटी के निर्माण में अंतरिक्ष वैज्ञानिक मेघनाथ साहा का बड़ा हाथ था। पंडित नेहरू ने इस कमेटी के 15 प्रमुख व्यक्तियों में पांच प्रमुख वैज्ञानिकों को शामिल किया। वैसे यह कमेटी कोई ज़्यादा नहीं चल पाई, लेकिन पंडित नेहरू ने अपने इरादे स्पष्ट कर दिए थे।

सन् 1946 में इन्होंने 'द डिस्कवरी ऑफ इंडिया' नाम की प्रसिद्ध पुस्तक लिखी। इसमें इन्होंने शब्द साइंटिफिक टेंपर का प्रयोग किया है। बहुत से लोगों का कहना है कि प्रथम बार यह शब्द गढ़ा गया है। इससे पूर्व हमारे पास scientific attitude और scientific outlook जैसे शब्द थे। लेकिन scientific temper शब्द पहली बार शब्दकोश का हिस्सा बना था। एक छानबीन यह भी कहती है की यह शब्द 'साइंटिफिक टेम्पर पहली बार शब्दकोश का हिस्सा अक्तूबर 1907 में बना था। यह उस समय ब्रिटिश मेडिकल जर्नल में पहली बार छपा था। लेकिन उस समय यह शब्द किन्हीं अन्य अर्थों में सामने आया था। हम देखते हैं कि बहुत बार ऐसा होता है जब किसी वैज्ञानिक के कार्य को स्वीकृति नहीं मिलती या उनके काम को उस अहमियत के अनुसार नहीं सराहा जाता जितना अच्छा कि वह काम होता है। इसलिए उस वैज्ञानिक में रोष या गुस्सा होना स्वाभाविक है। इस गुस्से के इज़हार के रूप में यह शब्द सन् 1907 में पहली बार सामने आया था। विज्ञान के इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण है जहां वैज्ञानिकों के काम को तुरंत सराहना नहीं मिली। हम जानते हैं कि प्रसिद्ध वैज्ञानिक बोल्ट्ज़मैन को जब अपनी शोधों के लिए सही संलूक नहीं मिला तो उन्होंने आत्महत्या तक कर ली थी।

पंडित नेहरू ने इस शब्द साइंटिफिक टेंपर को भिन्न अर्थों में प्रयोग किया है। यह भी सही है कि स्वयं पंडित नेहरू ने इस शब्द की व्याख्या नहीं दी, एक ऐसी व्याख्या जिससे हम आज परिचित हैं। इसकी व्याख्या कई पड़ावों से होकर गुज़री है। पंडित नेहरू के विचारों से कुछ अंदाज़ा लगाया जा सकता है। पंडित नेहरू ने विज्ञान को (1) एक दार्शनिक पहलू में सच का पीछा करने वाली सबसे बड़ी कवायद माना है; (2) ज्ञान का एक उच्च स्तरीय आधिकारिक रूप माना है, (3) सामाजिक ज़रूरतों को समझने वाला (मसलन स्वास्थ्य, गरीबी, रोज़गार आदि) एवम् इनसे पार पाने में सक्षम माना है।

इन मान्यताओं के चलते पंडित नेहरू को मुश्किलों का सामना भी कम नहीं करना पड़ा। इसका एक महत्वपूर्ण उदाहरण है सन् 1934 में बिहार में आया भूकंप। नेहरू जी वहां भूकंप पीड़ितों की सहायता के लिए जा रहे थे। नेहरू जी के मैंटर गांधी जी ने यहां तक कह दिया की भूकंप तो पापों के लिए दी गई ईश्वरीय सज़ा है। अब नेहरू जी करें भी तो क्या? लेकिन वे अपने स्टैंड पर रहे। एक दूसरा उदाहरण भी हमें ध्यान में रखना चाहिए कि स्वतंत्रता उपरांत उठे सोमनाथ प्रकरण पर महात्मा गांधी ने ही नेहरू जी का सबसे ज़्यादा साथ दिया था। जब यह तय हो गया कि भारत को आज़ादी मिलने वाली है और संविधान निर्माण की बात आ गई तो आप पूरे मन से चाहते थे कि वैज्ञानिक मानसिकता, समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता हमारे संविधान का हिस्सा रहें परंतु यह सब हो नहीं पाया। लेकिन उन्होंने इस बात को स्वीकारा कि ''मेरी राजनीतिक ज़रूरत बेशक मुझे अर्थतंत्र की ओर खींच ले गई है लेकिन मैं पूरी तरह आश्वस्त हूं कि भूख, गरीबी एवं रूढ़िवाद के खिलाफ लड़ाई विज्ञान के बिना नहीं लड़ी जा सकती।'' (सन् 1938 में इंडियन साइंस कांग्रेस में दिया गया भाषण)।

आज़ादी के बाद देश की बागडोर इनके हाथ में आ गई। ये अपने किसी भी महत्त्वपूर्ण भाषण में विज्ञान का हवाला दिए बिना नहीं रहते थे। सन् 1950 में नेशनल फिज़िकल लैबोरेट्री के उद्घाटन के अवसर पर बोलते हुए उन्होंने कहा, Science is something more.It is a way of training the mind to look at life and the whole structure of society. So I stress the need for the development of a scientific mind and temper which is more important than actual discovery and it is out of this temper and method that many more discoveries will come. सन् 1955 में इन्हें एक बार फिर यूएसएसआर जाने का अवसर मिला। विज्ञान एवं समाजवाद के प्रति इनके विचार और पुख्ता हुए। वापस लौटते ही आपने देश के लिए विज्ञान नीति पर विचार करना शुरू किया। इन्हीं के प्रयासों से साइंस पॉलिसी रेज़ोल्यूशन 4 मार्च 1958 को लागू हुआ। उनका कहना था, "The key to National prosperity apart from the spirit of the people, lies in the modern age in the effective combination of three factors: technology, raw material and capital,of which first is perhaps the most important. इस नीति में इनका ज़ोर इसी बात पर था की वैज्ञानिक नज़रिए, विज्ञान की विधि तथा वैज्ञानिक ज्ञान के ज़रिए ही देश को रीज़ेनबल सेवाएं मिल सकती हैं।

सन् 1959 की एक घटना है। 13 जुलाई को इनके पास श्री रामस्वरूप शर्मा, ज्योतिषाचार्य का एक पत्र आया। पत्र में आग्रह था कि वे ज्योतिष पर लिखी अपनी पुस्तक श्री नेहरू को समर्पित करना चाहते हैं। तुरंत पंडित नेहरू ने इस पत्र के जवाब में 16 जुलाई को एक पत्र लिखकर कहा, इस प्रकार मुझे पुस्तक का सम्मान मिलना वैज्ञानिक मानसिकता के विरुद्ध जाएगा।

मैं खगोल एवं ज्योतिष में अंतर समझता हूं। ज्योतिष में विश्वास रखने की बजाय मेरा विश्वास वैज्ञानिक विधि के प्रयोग में है।

पंडित नेहरू वैज्ञानिकों का बड़ा सम्मान करते थे। वे मेघनाथ साहा से बहुत प्रभावित थे। यह और बात है कि श्री मेघनाद साहा का शोधपत्र चार बार नोबेल कमेटी के पास जाकर वापस लौट आया था और पुरस्कार नहीं मिला। आपने एक बार अपने सारे प्रोटोकॉल तोड़कर डॉक्टर भाभा की कद्र की थी। इन के सम्मान में आप स्वयं अपनी कुर्सी से उठ कर उनके पास गए थे। उल्लेखनीय है कि जब प्रसिद्ध वैज्ञानिक Neils Bohr भारत आए थे (सन् 1960) तो नेहरू जी ने अपने अन्य कार्यक्रम स्थगित कर दिए और इनके साथ-साथ रहे थे। आपने इनका सत्कार एक राज्य अध्यक्ष की तरह किया था। नोबेल पुरस्कार प्राप्त प्रसिद्ध वैज्ञानिक जेबीएस हाल्देन अपने जीवन के अंतिम वर्ष भारत में बिताने आए थे। उनका यहां रहना पंडित नेहरू के विज्ञान प्रेम के साथ जुड़ा हुआ था। सीएसआईआर की स्थापना में इन दोनों का ही बड़ा योगदान था।

हम जानते हैं कि नेहरू जी के ये विचार उनके जीते जी संवैधानिक दर्जा प्राप्त नहीं कर सके। यह तो 42 वें संविधान संशोधन (1976) के बाद पार्ट 4 ए आर्टिकल 51ए द्वारा ही संभव हुआ कि उनके विचार औपचारिक रूप में हमारे संविधान का हिस्सा बने।

जैसे ही शब्द साइंटिफिक टेंपर आधिकारिक रूप में सामने आया, इस पर सार्वजनिक बहस शुरू हो गई एवम् इसकी व्याख्याओं की बात उठी। अक्तूबर 1980 में कून्नूर में एक चार दिवसीय कार्यशाला चली। इसमें उस समय के जाने-माने विचारकों एवं वैज्ञानिक मनीषियों ने भाग लिया। इन्हीं बहसों के आधार पर जुलाई 1981 में %नेहरू केंद्र, मुंबई% द्वारा वैज्ञानिक मानसिकता पर एक आधिकारिक कथन जारी किया गया। इसका आमुख नेहरू के प्रशंसक रहे पी.एन. हक्सर ने लिखा है। यह कथन पढ़ने लायक है।

प्रतिगामी ताकतों द्वारा साइंटिफिक टेम्पर एवं नेहरू जी आज सर्वाधिक निशाने पर हैं जिन्हें बचाना आज हमारी ज़िम्मेदारी बनती है।

(लेखक रा.व.मा.वि. पटीकरा से सेवानिवृत्त प्राचार्य और ह.वि.ज्ञा.स. के राज्य कार्यकारिणी सदस्य हैं।)

हिंदू साम्प्रदायिकता के विरुद्ध थे स्वामी विवेकानंद

-योगेन्द्र यादव

स्वामी विवेकानंद द्वारा शिकागो की विश्व धर्म महासभा में 11 सितम्बर 1893 को दिए भाषण को याद कर हर ड्क्षहदू और हर भारतीय का सीना चौड़ा हो जाता है। उस भाषण को विश्व पटल पर हिंदू धर्म और संस्कृति के मान-सम्मान के उद्घोष के रूप में याद किया जाता है लेकिन बहुत कम लोग दरअसल जानते हैं कि उन्होंने शिकागो में हिंदू धर्म की प्रतिष्ठा में कहा क्या था। अपने ऐतिहासिक भाषण की शुरूआत में ही स्वामी जी कहते हैं, ''मैं एक ऐसे धर्म का अनुयायी होने में गर्व का अनुभव करता हूं जिसने संसार को सहिष्णुता तथा सार्वभौम स्वीकृति दोनों की शिक्षा दी है।

हम लोग सब धर्मों के प्रति केवल सहिष्णुता में ही विश्वास नहीं करते, वरन समस्त धर्मों को सच्चा मानकर स्वीकार करते हैं। मुझे एक ऐसे देश का व्यक्ति होने का अभिमान है जिसने इस पृथ्वी के समस्त धर्मों और देशों के उत्पीड़ित और शरणार्थियों को आश्रय दिया है।'' जिस धर्म सभा में बाकी सब धर्मों के गुरु दूसरे धर्मों पर अपने धर्म विशेष की श्रेष्ठता साबित करने की कोशिश कर रहे थे, वहीं स्वामी जी ने सभी धर्मों के सच को स्वीकार करना ही हिंदू धर्म की विशिष्टता बताकर अपनी संस्कृति को इस प्रतिस्पर्धा से ऊपर खड़ा कर दिया, दुनिया के हर धर्म के मर्म को जोडने़ का एक सूत्र थमा दिया।

यह था स्वामी विवेकानंद के जादू का रहस्य। इसे भारत का दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि ऐसे चिंतक की विरासत का दो वैचारिक और राजनीतिक खेमों ने अपनी नासमझी और चालाकी से सत्यानाश कर दिया है। एक तरफ अपने आप को आधुनिक और सैकुलर बताने वाले खेमे ने (हालांकि नेहरू इसका अपवाद थे) स्वामी जी की विरासत से सिर्फ इसलिए कन्नी काटनी शुरू की क्योंकि वह ड्क्षहदू धर्म की परंपरा के वाहक थे और निसंकोच ड्क्षहदू धर्म दर्शन और संस्कृति का प्रचार-प्रसार करते थे।

दूसरी तरफ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और भाजपा सहित संघ परिवार के तमाम संगठनों ने स्वामी विवेकानंद की विरासत पर नाजायज कब्जा जमा कर उनके विचारों का इस्तेमाल अपनी ओछी साम्प्रदायिक राजनीति के लिए करना शुरू किया। ड्क्षहदू धर्म की विशिष्टता को हिंदू धर्म की श्रेष्ठता बताकर दूसरे धर्मावलंबियों पर दादागिरी करने की राजनीति के लिए स्वामी विवेकानंद को ढाल बनाना शुरू किया।

मुझे यह देखकर बहुत संतोष हुआ कि हाल ही में स्वामी विवेकानंद के दर्शन पर प्रकाशित हुई एक पुस्तक में स्वामी जी की विरासत को हड़पने की इस कोशिश का खंडन किया गया है।

'संघ परिवार की सर्वोपरि प्रतिमूर्ति (आइकन) ही उसके लिए सबसे बड़ा अभिशाप (नेमेसिस) है।' यानी कि जिस स्वामी विवेकानंद को संघ परिवार 'हिन्दुत्व' के प्रतीक के रूप में पेश करता है, उनके विचार ही संघ परिवार के खिलाफ सबसे बड़ा औजार हैं, नफरत की राजनीति की सबसे असरदार काट हैं।

485 पृष्ठों की इस पुस्तक में लेखक ने बहुत विस्तार और बारीकी से स्वामी विवेकानंद के जीवन, दर्शन और उनके ऐतिहासिक संदर्भ की व्याख्या करते हुए यह स्थापित किया है कि आज 'हिंदुत्व' के नाम पर जो कुछ चल रहा है, उससे स्वामी विवेकानंद की बुनियादी असहमति थी। दिक्कत यह है कि भगवाधारी ड्क्षहदू स्वामी की तस्वीर देखते ही हमारे जहन में एक छवि बन जाती है लेकिन यह पुस्तक बताती है कि स्वामी विवेकानंद का जीवन और आचरण उस छवि से मेल नहीं खाता है।

एक संन्यासी होने के नाते स्वामी जी ने ब्रह्मचर्य व्रत और धन संपत्ति से मुक्त रहने का धर्म पूरी तरह निभाया। लेकिन उन्हें जीवन के रसस्वादन से कोई परहेज नहीं था। हिंदू धर्म के कर्मकांड और पोंगा पंडितों से स्वामी जी को सख्त नफरत थी। इन कर्मकांडों से तंग आकर स्वामी जी ने कहा था, ''अपने सारे धर्म ग्रंथ गंगा में फैंक दो और पहले लोगों को रोटी और कपड़ा हासिल करने की विधि सिखाओ।''

स्वामी विवेकानंद की आड़ लेकर गैर-हिंदुओं खासतौर पर ईसाइयों और मुसलमानों के खिलाफ दुष्प्रचार करने वालों को यह पुस्तक याद दिलाती है कि स्वामी जी का स्वयं ईसाई धर्म के प्रति कितना अनुराग था और ईसा मसीह में कितनी आस्था थी। एक भिक्षु की तरह देशाटन करते समय स्वामी जी के पास केवल दो ही पुस्तकें थीं-भगवद् गीता और 'इमिटेशन ऑफ क्राइस्ट'। यीशु मसीह के बारे में उन्होंने कहा, ''अगर मैं जीसस के समय जीवित होता तो अपने आंसुओं से ही नहीं, बल्कि अपने जिगर के खून से मैं उनके पांव धोता।''

स्वामी विवेकानंद ने बार-बार इस्लाम के प्रति गहरा सम्मान व्यक्त किया। उन्होंने इस धारणा का खंडन किया कि भारतीय सभ्यता का पतन मुस्लिम अतिक्रमण के कारण हुआ। स्वामी जी की मान्यता थी कि भारतीय सभ्यता का पतन मुस्लिम राज शुरू होने से पहले ही हिंदू समाज की ऊंच-नीच और अंतर्मुखी प्रवृत्ति के कारण हो चुका था। वह कहते हैं कि भारतीय समाज का पतन उस दिन तय हो चुका था जिस दिन उसने 'मलेच्छ' शब्द गढ़कर बाहरी लोगों से संवाद तोड़ लिया।

इस्लाम में भाईचारे और समता की प्रशंसा करते हुए स्वामी जी ने कहा कि हिंदुओं को भले ही अद्वैत दर्शन तक पहुंचने का श्रेय दिया जा सकता हो, लेकिन व्यवहार में हिंदुओं ने अद्वैत दर्शन का पालन कभी नहीं किया। अगर दुनिया में कोई भी धर्म हुआ है जो अद्वैत दर्शन की समता के आदर्श के नजदीक पहुंच सका है तो वह केवल इस्लाम है। ऐसे सार्वभौम दार्शनिक को केवल एक सम्प्रदाय विशेष का महापुरुष बना देना और उनके नाम पर दूसरे धार्मिक सम्प्रदायों के खिलाफ धर्मांधता की राजनीति करना स्वामी विवेकानंद की विरासत का अपमान है।

अगर आज स्वामी विवेकानंद हमारे बीच होते और ड्क्षहदू धर्म के नाम पर लिंचिंग, बुलडोजर, दूसरे धर्मावलंबियों पर दबदबा और बहुमत की दादागिरी देख रहे होते तो वह निश्चित ही इसके खिलाफ खड़े होकर वही कहते जो उन्होंने शिकागो में कहा था, ''साम्प्रदायिकता, हठधर्मिता और उनकी विभीत्स वंशधर धर्मांधता इस सुंदर पृथ्वी पर बहुत समय तक राज कर चुकी हैं। पर अब उनका अंत समय आ गया है और मैं हृदय से आशा करता हूं कि समस्त धर्मांधता का, तलवार या लेखनी के द्वारा होने वाले सभी उत्पीडनों का, तथा मानवों की पारस्परिक कटुताओं का मृत्यु निनाद हो।''